डा. ब्रह्मदेव शर्मा से साक्षात्कार

असहमति के अर्थ
'तो पूरी तरह नंगा हो जाने दो'

किस्सा जनवरी 1971 का है। चुनाव-कवरेज के सिलसिले में तब मैं बस्तर गया हुआ था। सुखद संयोग था, डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा से वहाँ मेरी पहली मुठभेड़ हुई। तब भी वे जिलाधीश या नौकरशाह कम, एक जुनूनी सोशल एक्टीविस्ट ज्यादा दिखाई देते थे। एक अवधूत की भाँति चौबीसों घंटों जिले में अलख जगाए रहते थे; रात-बिरात कहीं भी जीप लेकर निकल जाना; रेस्ट-हाउस से दूर रहकर थानागुड़ी या झोंपड़ी में ठहरना और सुबह-सवेरे तक आदिवासियों की चौपालें लगाए रखना। एक घनी रात, बेलाडीला के जंगलों में जीप ही उलट गई, पुलिया के नीचे गिर गई; मरते-मरते बचे। यह लेखक भी जीप में सवार था। दैवी कृपा थी, किसी को खरोंच तक नहीं आई। आस-पास के गाँवों से आदिवासियों को बुलाया और जीप सीधी की गई। डॉ. शर्मा स्वयं स्टीयरिंग सम्हाले हुए थे। ड्राइवर पीछे बैठा हुआ था। तब मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्णकालिक कार्यकर्ता का पत्र लेकर उनसे मिला था। बस्तर की मुठभेड़ एक निरंतर संवाद में बदल गई। किन्हीं बुनियादी मुद्दों पर डॉ. शर्मा के साथ गंभीर मतभेद भी रहे। वे मुझे उस समय एक कट्टर हिन्दूवादी, यहाँ तक कि ब्राह्मणवादी दिखाई दिए। कुछ क्षेत्रों में उन्हें आर.एस.एस. समर्थक कहा जाता था। लेकिन संवाद जितने गाढ़े होने लगे, डॉ. शर्मा का मानवतावादी, उदारवादी, दलितवादी और राष्ट्रवादी रूप सामने आने लगा। आपातकाल के दौरान उन्होंने मार्क्सवादियों, जनसंघियों और जेपीवादियों की समान रूप से मदद की। निजी संबंधों में उन्होंने वैचारिक पूर्वाग्रहों को कभी आड़े नहीं आने दिया। एक ही कसौटी थी संबंधों की, व्यक्ति धरा के अभागों के प्रति प्रतिबद्ध है या नहीं। आदिवासी क्षेत्रों में किन्हीं संघर्षरत कार्यकर्ताओं को गिरफ्तारी से बचाने के लिए वे इस्तीफा देने के लिए तैयार हो गए थे। उस समय वे केंद्रीय गृह मंत्रालय में संयुक्त सचिव थे। बस्तर के कार्यकाल के दौरान ही डॉ.

शर्मा एक किंवदती बन चुके थे। विदेश-नियुक्ति के कई प्रलोभन उनके सामने थे। देश में ही कम से कम उपराज्यपाल बन सकते थे। वाइस-चांसलर बनना एक सामान्य बात थी। लेकिन, डॉ. शर्मा ने आयुक्त के पद पर रहते हुए भी सरकार से सिर्फ एक रुपया लिया; अपनी पेंशन पर गुजारा करते रहे। सरकार ने दिल्ली में जो फ्लैट दिया, उसमें आदिवासी, हरिजन और सामाजिक कार्यकर्ता आए-दिन रहते रहे; आयुक्त डॉ. शर्मा ने स्वयं को एक कमरे में सिकोड़े रखा।

मुझे यकीन नहीं था, डॉ. शर्मा इस हद तक स्वयं को डीक्लास्ड कर लेंगे, लेकिन उन्होंने करके दिखाया। एक झटके में नौकरशाही छोड़ दी, दिल्ली की चमक-दमक छोड़ दी और जा बसे ठेठ बस्तर के एक गाँव में। डॉ. शर्मा जहाँ समाज और इंसान के परिवेश को आदर्शवादी व मानवीय द ष्टिकोण से देखते हैं, वहीं वैज्ञानिक चिंतन के माइक्रोस्कोप से अंतर्विरोधों को समझने एवं उनका समाधान करने में भी जुटे हुए हैं। लोकतंत्र में कार्यपद्धति से मतभेद होना स्वाभाविक है, लेकिन ईश्वर-प्राप्ति या मुक्ति पर हक जितना सगुणवादियों का है, उतना ही निर्गुणवादियों का भी है। असहमति का दमन न राजनीति को कहीं ले जा सका है, न रूहानियत को अल्लाह तक पहुँचा सका है। 'समाज की तलछट, समाज का कलश बने', डॉ. शर्मा यही चाहते हैं। पिछले दिनों जगदलपुर में कथित 'असहमतों' की एक टोली ने उन्हें निर्वस्त्र करके पीटने की कोशिश की। वैचारिक असहमति के इस फासीवादी आख्यान के संदर्भ में उनसे बातचीत :

जोशी : *आप बस्तर के आला हाकिम रह चुके हैं। जिलाधीश के रूप में जगदलपुर की सड़कों पर आपकी हुकूमत रही है। बीस-इक्कीस बरस बाद वही सड़कें, वही नगर आपके साथ किए जा रहे वहशियाना व्यवहार के गवाह भी बनते हैं। ऐसे शर्मनाक क्षणों में आपके अंतर्मन पर क्या बीत रही थी?*

शर्मा : मैं समझता हूँ मेरे मन पर कुछ नहीं बीत रहा था। मैं यह सोच रहा था कि हो सकता है कि जिन लोगों के लिए मैं काम कर रहा हूँ वे भी यह मानें कि मेरा काम उनके खिलाफ है। इसकी एक वजह है। लोगों को भरमा दिया जाता है कि उनके विकास के लिए काम किए जा रहे हैं; वास्तविकता में ऐसा नहीं होता है। लेकिन, भ्रम के वातावरण में जब बुनियादी लड़ाई लड़ी जाती है तो इस तरह की घटनाओं का होना अपरिहार्य है। सच बात यह है कि जिन लोगों ने मेरे साथ ऐसा सलूक किया उन पर मुझे तरस आता है।

जोशी : *असभ्यतापूर्ण स्थिति का सामना करते हुए आपको दु:ख या पीड़ा हुई होगी?*

शर्मा : दु:ख तो बिलकुल नहीं हुआ, क्योंकि ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए

मैं मानसिक रूप से तैयार था। बात छोटी-सी है। जब आप निहित स्वार्थी तत्वों के खिलाफ आवाज उठाएँगे तो आपके साथ कुछ भी घट सकता है।

जोशी : *1970-71 में बस्तरवासियों ने आपको एक गाँधीवादी, ईमानदार, प्रतिबद्ध और निर्भीक प्रशासक के रूप में देखा है, और आज वे आपको एक जुझारू सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देख रहे हैं। जब आपको सड़कों पर बर्बरतापूर्वक ढंग से नग्नावस्था में घुमाया जा रहा था तब जगदलपुरवासी मूकदर्शक क्यों बने रहे? उनकी इस खामोशी को विवशता कहें या मानसिक दासता या कायरता या अक्षम्य अपराध, और या लोकतंत्र की ट्रेजडी?*

शर्मा : एक बात तो यह है कि बस्तर में मेरी लोकप्रियता गाँवों में रही है। नगर हमेशा आदिवासी शोषण के केंद्र होते हैं। नगर के उच्च वर्ग ने मुझे कभी भी दिल से स्वीकार नहीं किया था। जिलाधीश कार्यकाल के दौरान मैंने जितने भी काम किए उनसे इन ऊँचे तबकों के हितों को चोट पहुँची, लेकिन आदिवासी का हित हुआ। उदाहरण के लिए मैंने तब वन-रक्षा की बात की, लकड़ी की बात की, इससे ठेकेदार नाराज हुए। जब व्यापारी वर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ कदम उठाया तो उनके गुस्से का निशाना बना। आदिवासियों की जमीन की रक्षा में कदम उठाए तो भू-लुटेरे मेरे खिलाफ हो गए। इसी तरह जब बैलाडीला में आदिवासी युवतियों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई और उनके देह-शोषण की रोकथाम की कोशिश की गई तो ये ही निहित स्वार्थी तत्व मेरे खिलाफ हो गए, क्योंकि इन्हीं तत्वों ने अपने घरों में आदिवासी लड़कियों को रखा हुआ था। संक्षेप में, मेरे हर कदम से किसी-न-किसी निहित स्वार्थ का अहित होता रहा है। इसलिए इन स्वार्थी वर्गों ने मुझे एक निरंकुश कलेक्टर के रूप में देखा। तो ये तत्व मेरी हुजूम से क्यों रक्षा करते? इतना ही नहीं, जिला प्रशासन खामोशी से सब कुछ देखता रहा।

जोशी : *देखिए, आपकी बात सही है। लेकिन, एक सभ्य व आधुनिक समाज में असभ्यतापूर्ण कारनामों का द श्य चल रहा हो, नगर के निचले व मध्य वर्ग के लोग खामोशी से सब कुछ देख रहे हों—इस सबको आप क्या कहेंगे?*

शर्मा : इस स्थिति की असली वजह समाज का विखंडन है। आज व्यक्ति स्वयं में समाता जा रहा है। समाज के बिखराव के दौर में सामूहिक मुद्दों पर त्वरित प्रतिक्रिया नहीं हो पाती है। और जो यह पढ़ा-लिखा वर्ग है, यह तत्काल प्रतिक्रिया से घबराता है; यह सोचने लगता है। इसीलिए जब न्यूयार्क की सड़कों पर बलात्कार किया जाता है तो लोग अपनी खिड़की से चुपचाप देखते रहते हैं। यह बुद्धिवादी, तर्कशील, विवेकशील समाज की नियति है। जब हम भावना से विवेक की ओर जाते हैं, तब ऐसा होता है; दूसरे शब्दों में, एक निश्छल व निर्मल प्रतिक्रिया लुप्त हो जाती है।

एक वजह यह भी थी कि मेरे जैसे व्यक्ति के साथ ऐसा हो सकता है तो इसका प्रतिकार करनेवाले सामान्य व्यक्तियों के साथ क्या नहीं हो सकता, यह भय भी उनमें रहा होगा। मैं यह भी कहना चाहूँगा कि इस तरह की घटनाओं से संकेत मिलते हैं कि फासीवादी ताकतों का तेजी से उदय हो रहा है।

जोशी : *आपको ऐसा नहीं लगता कि यह स्थानीय या जगदलपुर स्तर की कायरता कल राष्ट्रीय स्तर पर भी दिखाई दे, और जैसा कि आप कह रहे हैं, कल फासीवादी ताकतें राष्ट्रीय स्तर पर उभरती हैं तो उनका कोई प्रतिवाद ही न हो? क्या जगदलपुर नगर की कायरतापूर्ण तटस्थता को संभावित राष्ट्रीय कायरता के लक्षण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए?*

शर्मा : कायरता ही क्यों लें? मैं तो समझता हूँ कि जब राष्ट्रीय स्तर पर फासीवाद उभरेगा तब इस कायरता को सही भी माना जा सकता है। हिटलर के जमाने में क्या हुआ? हिटलर ने प्रतिदिन बीस हजार लोगों को खत्म करने के कारखाने या गैस-चैम्बर बनवाए थे; आदमी की खाल के बटुए बनाए गए। फासीवाद में एक खास किस्म का माहौल पैदा करके आदमी को इतने नीचे गिरा दिया जाता है, सही आदमी को गलत करार दे दिया जाता है; सही बात कहने पर दंडित और विकास-विरोधी घोषित किया जाता है– जैसे मुझे किया गया – और एहसास कराया जाता है कि विकास विरोधियों की यही दुर्गति होनी चाहिए। मूर्ति-भंजक घोषित किया जाता है। मंदिर-मस्जिद की लड़ाई में यह तो नहीं देखा जाता कि इंसान की हत्या की जा रही है या किसी अन्य की। चूँकि विकास की नई मूर्तियाँ बनाई जा रही हैं, अतः जो इनका विरोध करेगा उसे मूर्ति-भंजक कहा जाएगा। और मैं मूर्ति-भंजक हुआ, इसलिए मुझे सजा मिलनी चाहिए।

जोशी : *फर्ज कीजिए, आप बस्तर के प्रशासक होते, और किसी को नंगा घुमाया जा रहा होता, तब आप क्या करते?*

शर्मा : मैं व्यक्तिगत रूप से पीड़ित व्यक्ति की रक्षा करता, और मैंने अनेक बार ऐसा किया भी है। जगदलपुर में ही एक बार सिनेमा में दंगा मच गया था, मैं अपने बंगले से निकला और सिनेमा हॉल में पहुँच गया। इसके बाद प्रशासनिक प्रक्रिया शुरू हो गई। मेरे ही प्रशासन के दौरान बैलाडीला में आदिवासियों पर पुलिस के अत्याचार हो रहे थे। मैं सीधा घटनास्थल पर पहुँच गया। इससे स्थिति बदल गई। जब प्रशासन का मुखिया असंदिग्ध ढंग से न्याय व पीड़ितों के साथ खड़ा हुआ दिखाई देता है तो उसके मातहत भी वैसा ही करने लगते हैं। जब मैं मध्यप्रदेश का डी पी.आई. था और परीक्षा में नकल बंद करवा रहा था, तब लड़कों ने मुझे घेर लिया और पीटने लगे। मैंने कहा कि तुम मुझे मारो, लेकिन मैं पुलिस नहीं बुलाऊँगा। यह देखकर अध्यापक और कुछ लड़कों ने ही मेरी रक्षा की, मुझे सुरक्षा दी। यह

पिपरिया की घटना है।

जोशी : *मान लीजिए, आपके स्थान पर कोई औरत होती और उसके साथ भी ऐसा अमानुषिक व्यवहार हो रहा होता, तब भी क्या जनता और प्रशासन खामोश रहता?*

शर्मा : अब यह तो हाईपोथेटिकल सवाल है।

जोशी : *जी नहीं, ऐसा हो चुका है। एक दूसरे भाजपा शासित प्रदेश राजस्थान में भी एक स्वयंसेवी महिला भँवरी बाई के साथ इससे भी घृणित व्यवहार हो चुका है। इसलिए यह काल्पनिक सवाल नहीं है।*

शर्मा : तो उसके साथ भी यही घटना घट सकती थी। उसे भी समाज-विरोधी और विकास-विरोधी करार दे दिया जाता।

जोशी : *जब आप प्रशासक थे, आपके तबादले लगातार होते रहे। प्रत्येक राजनीतिक शासक को आपसे कम-ज्यादा शिकायत रही। इसकी क्या वजह है?*

शर्मा : राजनीतिज्ञों के साथ जो मेरे संबंध रहे हैं उनके संदर्भ में मैं एक बात साफ कर देना चाहता हूँ। अपने संपूर्ण प्रशासनिक जीवन में व्यक्तिगत स्तर पर किसी भी राजनीतिज्ञ के साथ मेरे कटुता के संबंध नहीं रहे। मुझे इस बात का फख्र है कि मुझे हर स्तर पर हर किस्म के राजनीतिज्ञों से पर्याप्त सम्मान मिला है। लेकिन मेरे जो विरोध हुए हैं, वे नीतिगत प्रश्नों और नीतिगत कार्यों पर हुए हैं।

तो ऐसा है कि मेरा नजरिया शुरू से ही जनवादी रहा है। हर राजनेता मुझसे खुश रहा है। वे मुझसे सिद्धांत बनवाते थे, योजना बनवाते थे। जब तक आप इन दोनों बातों तक सीमित रहते हैं, किसी के निहित हित प्रभावित नहीं होते। लेकिन जब नीतियों पर अमल किया जाने लगता है, तब हित प्रभावित होते हैं; तब कहा जाता है कि भाई, इससे अधिक नहीं होना चाहिए, क्योंकि कार्यान्वयन की प्रक्रिया में व्यक्ति और वर्ग, दोनों के हितों को चोट पहुँचती है। बस यहीं से मतभेद शुरू हो जाते हैं। मैं नाम नहीं लूँगा, एक दफे एक मंत्री बहुत रेडीकल बोल रहे थे। मैंने उनसे कहा कि मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। आप जो नीति व कार्यक्रम घोषित करेंगे, मैं उस पर चलने लगूँगा; लेकिन बीच में ही पीछे हटने को कहेंगे तो वह नहीं होगा। प्रशासक की हैसियत में भी मेरी एक छवि है। ऐसी ही स्थिति पी.सी. सेठीजी के साथ पैदा हो गई थी, अध्यापकों को भोपाल से बाहर भेजने पर। उनके ही निर्णय को जब लागू करने की कोशिश की गई तो कतिपय लोगों की व्यक्तिगत समस्याएँ पैदा होने लगीं। तब मैंने साफ कह दिया था कि हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं।

देखिए, कुछ दूर तक तो हमारी व्यवस्था जनवादी नीतियों को स्वीकार करती है। चूँकि वह अपने मूल चरित्र को बदल नहीं पाती है इसलिए किसी खास मुकाम पर पहुँचकर अपनी ही नीतियों का विरोध करने लग जाती है। तगड़े निहित स्वार्थ हावी

हो जाते हैं। नीतिगत सवालों को लेकर तीन मुख्यमंत्रियों– श्यामाचरण शुक्लजी, सेठीजी और अर्जुनसिंहजी– ने मेरे तबादले किए। मैंने कभी बुरा नहीं माना। तीनों ही स्थितियों में मैंने विरोध में एक शब्द भी नहीं कहा। जब मुझे बस्तर से हटाकर भोपाल लाया गया था तब वहाँ के सभी ग्यारह विधायकों ने राज्यपाल से मुझे वापस भेजने का अनुरोध किया था। इन विधायकों में आज के भाजपा मंत्री श्री बलिराम कश्यप भी तो शामिल थे। राज्यपाल सत्यनारायण सिन्हा ने मुझसे कहा भी कि यदि मैं चाहूँ तो वापस बस्तर जा सकता हूँ, तबादला रद्द किया जा सकता है। मैंने विनम्रतापूर्वक इंकार कर दिया था। मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल ने वक्तव्य भी दिया था कि सरकार को शिक्षा विभाग में सुधार के लिए डॉ. शर्मा की जरूरत है। इससे मेरा मान ही बढ़ा था।

मैंने हमेशा यह माना है कि तबादला करने का अधिकार राजनीतिक शासकों का है। जब अर्जुनसिंहजी ने मेरा तबादला किया तो मैं छुट्टी चला गया। लेकिन तबादला करने के उनके अधिकार को मैंने कभी चुनौती नहीं दी। सेठीजी के अधिकार को भी चुनौती नहीं दी। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि किसी राजनेता ने मुझे सिद्धांत के विरुद्ध गलत बात करने या कहने के लिए कहा तक नहीं। मैं समझता हूँ यह मेरी सबसे बड़ी सफलता है। यदि किसी राजनेता को मैं पसंद नहीं आया तो उन्होंने अधिक से अधिक मेरा तबादला ही किया। चूँकि राजव्यवस्था उनको चलानी है इसलिए तबादला करने या न करने का अधिकार भी उनका है। एक नागरिक प्रशासक इसको चुनौती नहीं दे सकता।

जोशी : *सामाजिक जवाबदेही को लेकर राजनीतिक शासक और नौकरशाहों के बीच मुठभेड़ें चलती रहती हैं। आपकी दृष्टि में इसके लिए कौन दोषी है?*

शर्मा : मैं समझता हूँ कि जवाबदेही के मामले में प्रशासन की ज्यादा जिम्मेदारी है। प्रत्येक प्रशासक संविधान की शपथ लेता है। राजनेता भी यही करता है। यदि कानून का पालन नहीं होता है तो यह प्रशासक का फर्ज है कि वह राजनेता को संविधान की स्थिति से अवगत कराए। मिसाल के तौर पर, बरगी बाँध की घटना लें; मछली-शिकार को लेकर हमारा शासन से झगड़ा चल रहा है। कानून स्पष्ट रूप से कहता है कि स्वयं के उपभोग के लिए आदिवासी मछली मार सकते हैं। लेकिन प्रशासन ने जो नीलामी का नोटिस जारी किया उसमें इसका कहीं जिक्र तक नहीं है। सिर्फ मत्स्य-आखेट की नीलामी कहा गया है। राज्य की नीति है आखेट को ठेकेदारी पर देना। इस पर हमने आयुक्त से कहा कि जो आपने नोटिस जारी किया है उसमें आदिवासी के अधिकार का उल्लेख तक नहीं है; आपका कर्तव्य है कि इसे आप राज्य सरकार के ध्यान में लाएँ। इसी तरह की कई और विसंगतियाँ हैं। नीलामी तक संविधान-प्रदत्त अधिकारों के विरुद्ध है, क्योंकि नीलामी से

आदिवासियों की जीविका प्रभावित होती है। अतः आयुक्त को चाहिए था कि इन विसंगतियों की ओर राज्य शासन का ध्यान खींचते। लेकिन ऐसा नहीं किया गया। यहाँ तक कि एक मंत्री के पुत्र को ही ठेका दे दिया गया, क्योंकि उसने सबसे अधिक बोली लगाई थी। मैं इस पर कोई टिप्पणी नहीं कर रहा हूँ। सिर्फ यह कह रहा हूँ कि हमें समझना चाहिए कि इसके पीछे कौन-सी ताकत काम कर रही है। अब यहीं प्रशासक को चाहिए था कि वह स्टेंड लेता।

बस्तर में जब मैं जिलाधीश था तब मैंने किसी भी निजी क्षेत्र की माईनिंग-लीज पर दस्तखत नहीं किए थे। मेरी एक ही आपत्ति रहती थी कि खदान निजी क्षेत्र में नहीं होनी चाहिए; स्थानीय लोगों की इसमें हिस्सेदारी होनी चाहिए, सहकारी समिति होनी चाहिए। आबकारी नीति के मामले में भी यही हुआ। मैंने राज्य शासन की बात स्वीकार नहीं की। मैंने संविधान और कानून की रोशनी में राज्य शासन की नीतियों को देखा व परखा। विसंगतियाँ दिखाई दीं तो अपनी टिप्पणियों के साथ फाइल भोपाल भेज दी।

जोशी : *आपके समय से लेकर आज तक प्रशासक के मूल्य-संसार में किस तरह के परिवर्तन आपको नजर आते हैं?*

शर्मा : मैं समझता हूँ कि शुरू में प्रशासक में विकास के लिए उत्साह था। देश आजाद हुआ था, सभी युवा प्रशासक विकास के लिए संकल्पबद्ध थे। दायित्वबोध भी ज्यादा था। आज इसका अभाव दिखाई देता है। कैरियर-दृष्टि ज्यादा पनप रही है। इसकी एक वजह यह भी है कि राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ गया है। मंत्री और निचले स्तर की नौकरशाही के संबंध गाढ़े होते जा रहे हैं। पटवारी नायब तहसीलदार, थानेदार आदि के तबादलों में शिखर स्तर के राज़नीतिक शासक हस्तक्षेप कर रहे हैं। इससे प्रशासक का मनोबल प्रभावित हो रहा है। अस्तित्व-रक्षा के लिए वह जवाबदेही से जी चुराने लगा है। कैरियरवादी मूल्य उस पर हावी होता जा रहा है।

जोशी : *आपकी जनकल्याण एवं विकास को लेकर खास दृष्टि रही है। लेकिन यह दोष-रहित नहीं दिखाई देती। उदाहरण के लिए, आपने बैलाडीला में अनेक आदिवासी युवतियों को बाहरी लोगों के शोषण से बचाया। लेकिन उनकी नियति क्या रही? उनका पुनर्वास ठीक ढंग से नहीं हो सका। उनके पतियों ने उन्हें छोड़ दिया। दंतेवाड़ा के महिला निराश्रित आश्रम में कई ऐसी युवतियाँ रह रही हैं। बँधुआ श्रमिकों की मुक्ति व पुनर्वास के संबंध में भी यही समस्या है। बँधुआ श्रमिक मुक्ति अभियान के नेता स्वामी अग्निवेश भी इस समस्या से जूझ रहे हैं। इस संबंध में आपका क्या कहना है?*

शर्मा : सबसे पहले तो मैं यह कहूँगा कि दृष्टि साफ होनी चाहिए। लड़कियों का

ही प्रश्न लें। मैंने आदिवासी युवतियों को पत्नी का एक कानूनी दर्जा दिलवाया। अब प्रशासन को चाहिए था कि मेरे जाने के बाद जो व्यक्ति युवतियों को रखने के लिए तैयार नहीं, उनसे जीवनयापन-भत्ता दिलवाया जाता। मैंने सिर्फ यह किया था, आदिवासी लड़की जिसके साथ रह रही थी उसे वह अपना पति समझती थी, जबकि बाहरी आदमी उसे अपनी रखैल समझ रहा था। मैंने लड़की को एक कानूनी पत्नी का दर्जा दिलवा दिया था। बस। इससे ज्यादा कुछ नहीं किया। कमजोर वर्गों की रक्षा की जिम्मेदारी भी तो प्रशासक की होती है। अब बँधुआ मजदूरों को ही लीजिए। इसमें तीन पक्ष हैं—बँधुआ मजदूर, उत्पादन के साधन और जमींदार। विसंगति यह है कि आपने श्रमिक को मुक्त तो करा दिया, लेकिन भूस्वामी और उत्पादन के साधन के संबंधों में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया। दोनों के संबंध यथावत रहे। ऐसी स्थिति में मुक्त मजदूर का स्थायी पुनर्वास कैसे किया जा सकता है ? मेरा शुरू से यह मानना है कि मालिक और उत्पादन के साधन के बीच जो गलत रिश्ता है उसे पहले खत्म करो। उत्पादन के साधन और मजदूर के बीच खाई मत डालो। मेरा तो यह कहना है कि जो ईंट के भट्टे हैं या गिट्टी की खदानें हैं, उन पर बँधुआ मजदूरों का हक जमवा दीजिए।

***जोशी** : लेकिन जमीन या भट्टी में जिसकी पूँजी लगी है... वह...*

शर्मा : देखिए, मैं पूँजी को नहीं मानता। पूँजी भी तो शोषण से पैदा होती है। और आज की स्थिति में तो वह भी नहीं है। मार्क्सवादी विचार में तो गरीबों के शोषण से पूँजी का निर्माण होता है और वह पूँजीपति के हाथ में जाती है। लेकिन अब यह स्थिति भी बदल चुकी है। अब तो पूँजी तिकड़म या मैनीप्यूलेशन से बन जाती है। हर्षद मेहता इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। आज की तिकड़मी अर्थव्यवस्था है, जिसमें मेहनत या नियोजन की भी जरूरत नहीं है। आप रातों-रात करोड़पति बन सकते हैं। पूँजीपति की पुरानी अवधारणा बदल चुकी है।

इसलिए मैं यह मानता हूँ कि भूमि पर जोतनेवाले का हक होना चाहिए। ईंट भट्टों पर बँधुआ श्रमिकों का अधिकार होना चाहिए। कालीन उद्योग पर बाल-श्रमिकों एवं उनके माता-पिता का अधिकार होना चाहिए। बिचौलियों और गैर-मौजूद जमींदारों को समाप्त किया जाना चाहिए।

इसलिए मैं हमेशा से यह कहता आ रहा हूँ कि आदिवासी-विकास तभी सफल हो सकता है जब आदिवासी को शोषण से मुक्ति दिलाई जाए; सिर्फ राहत देने से कोई भला होनेवाला नहीं है। एक घड़ा है जिसका पेंदा टूटा हुआ है, उसमें कितना पानी डालो, रुकनेवाला है नहीं। यही स्थिति आदिवासी एवं हरिजन समाज की है।

आप जानते ही हैं कि भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। देश के 70 फीसदी लोग जल, जंगल और जमीन से जुड़े हुए हैं। इन संसाधनों पर आदिवासियों का

हक अँगरेजों ने खत्म कर दिया था। अंगरेजी-शासन का अन्याय आज तक चल रहा है, बल्कि और गहरा हुआ है। इसी वजह से आज की अर्थव्यवस्था विभाजित हो गई है। देश के 5-10 प्रतिशत लोग कानून-व्यवस्था के तहत इन संसाधनों पर अपना हक जमाए हुए हैं। इसी प्रवृत्ति के तहत एक सेठ बस्तर में आकर चार करोड़ रुपए लगाकर जंगल, जमीन और अन्य संपदाओं पर अपना हक जमा लेगा; आदिवासी अपने ही घर में बेघरबार और लावारिस हो जाएँगे। दो-चार लोगों को नौकरी मिल जाएगी। इन नौकरीवालों को मेरे खिलाफ कर दिया गया है।

जोशी : *आज विश्व-स्तर पर जिस तरह की अर्थव्यवस्था की प्रक्रिया चल रही है, भारत भी उसकी चपेट से बच नहीं सकता। उदारीकरण भी उसी का एक नतीजा है। तब आप किस प्रकार इन दबावों का सामना कर सकेंगे?*

शर्मा : पहली चीज तो यह है कि इस प्रक्रिया को सही रूप में देखा जाए। आज बिना कहे यह कहा जा रहा है कि गरीबों की बात कहना छोड़ दो। अब विश्व-स्तर पर 10-20 फीसदी लोग जो ऊपर हैं उन्हीं के लिए विकास करना है। इस व्यवस्था में 70-80 फीसदी लोगों को कीड़ा-मकौड़ा कहकर खत्म कर देना चाहते हैं। आज हमारी अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि सूक्ष्म स्तर पर बहुत थोड़े लोगों को स्थान देकर विशाल मानवता को मृगतृष्णा का शिकार बनाकर छोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए, प्रतिवर्ष लाखों लोग आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठते हैं। बमुश्किल एक हजार ही परीक्षा पास कर पाते हैं। लेकिन मृगतृष्णा का मायाजाल फैला रहता है कि कभी तो आई.ए.एस. बनेंगे। अब यह मोहभंग किया जाना चाहिए, और दो देश की व्यवस्था अस्वीकार की जानी चाहिए। अर्थव्यवस्था के खगोलीकरण से काम चलनेवाला नहीं है। विकास के मापदंड भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिए। भारत, चीन जैसे देशों में संसाधन सीमित हैं और आबादी अधिक हैं, जबकि योरप एवं अमेरिका में आबादी कम है और संसाधन अधिक हैं। इस बुनियादी अंतर को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

देखिए, पिछड़े क्षेत्रों के आंतरिक उपनिवेशीकरण की वजह से आदिवासी क्षेत्रों की ललाई, तरुणाई लुप्त दिखाई दे रही है। 1970-71 में आदिवासी युवक-युवतियों के चेहरों पर जो क्रांति मैंने देखी थी, आज वह नजर नहीं आती, क्योंकि उत्पीड़न व वंचन की प्रक्रिया तेज हो गई है। आज वे चूसे दिखाई देते हैं। इस कंगालीकरण की प्रक्रिया को रोका जाना चाहिए।

जोशी : *क्या औद्योगीकरण से कंगालीकरण की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता?*

शर्मा : नहीं, इसकी वजह है। औद्योगीकरण की धुरी कौन होगा? आदिवासी तो हाशिए पर ही रहेंगे ना। राँची, भिलाई, बैलाडीला क्षेत्रों के अनुभव इसके गवाह

हैं। दुखद स्थिति तो यह है कि हमारी सरकार के सामने यह आँकड़े तक नहीं हैं कि औद्योगीकरण से कौन वंचित हुआ है। पड़ोसी राज्य उड़ीसा के कोरापुट जिले में भयानक तबाही मची हुई है। सब बाहरी लोगों का दबदबा हो गया है। आदिवासी खदेड़ दिए गए हैं। अब बस्तर में भी यही होने जा रहा है।

जोशी : *ऐसी स्थिति में विकास की प्रक्रिया क्या होनी चाहिए? आपको विकास-विरोधी माना जा रहा है, जबकि आप इससे इंकार करते हैं। तब विकास कैसे किया जाए?*

शर्मा : विकास में यह देखना होगा कि इसका असली लाभ किसको मिलेगा? देखिए, अब तक तो सार्वजनिक क्षेत्र पनप रहे थे। लेकिन, अब पिछड़े व आदिवासी क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके साथ यह भी कहा जा रहा है कि जिसने धन लगाया है, उसको लाभ मिलेगा। इसलिए निजी क्षेत्र की कोई सामाजिक जवाबदेही भी नहीं रह गई है।

जोशी : *सो तो ठीक है। लेकिन बस्तर के विकास के लिए कुछ उद्योग-धंधे तो लगाने ही पड़ेंगे। इसलिए कौन-सी जुगत निकले जिससे विकास भी हो और आदिवासियों का शोषण भी न हो सके?*

शर्मा : देखिए, सबसे पहले तो मैं यह बतला दूँ कि मैं विकास-विरोधी नहीं हूँ। पिछले 40 सालों से हमने कभी यह सोचा ही नहीं कि आदिवासी को विकास-प्रक्रिया में केंद्र बिंदु बनाया जाए। बस यही सोचा कि विकास करते रहो, सब ठीक-ठाक होता जाएगा। अब देखिए, बुनियादी अंतर कहाँ है? केंद्रीय और उत्तरपूर्वी आदिवासी क्षेत्रों में आधारभूत अंतर दिखाई दे रहा है। नागालैंड के लोगों ने साफ शब्दों में कह दिया कि हम उद्योग तभी लगाएँगे जब वहाँ के लड़के-लड़कियाँ प्रशिक्षित होकर तैयार हो जाएँगे। मेघालय में रेल-लाइन नहीं बिछने दी, क्योंकि इससे बाहर के लोगों की घुसपैठ बढ़ जाएगी; जब आंतरिक तैयारी हो जाएगी तब उद्योग लगाने व लाइन बिछाने की इजाजत दे देंगे। मिजोरम का पूरा व्यापार मिजो लोगों के हाथों में है। लेकिन केंद्रीय आदिवासी क्षेत्रों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। आदिवासी संसार के दो भिन्न अनुभव हमारे सामने हैं। पूर्वी क्षेत्रों में शिक्षा पहले गई, विकास बाद में, जबकि केंद्रीय क्षेत्रों में विकास पहले और शिक्षा बाद में। हमारे यहाँ शिक्षा पर ध्यान ही नहीं दिया गया। इसीलिए मैंने जब ट्राइबल सब-प्लान बनाया तो पहला उद्देश्य शोषण से मुक्ति रखा। दूसरा था स्थानीय समाज को सक्षम बनाना। तीसरा था—परंपरागत अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना और चौथा था—नई अर्थव्यवस्था को उसमें जगह देना। इसलिए 1978 में सखलेचा सरकार के दौरान ही मैंने आदिवासी शिक्षा को प्राथमिकता दी। इन्हीं बलिराम कश्यपजी के समय ही रिकॉर्ड भवनों का निर्माण शुरू कराया; 800 छात्रावासों के निर्माण की

योजना बनाई भी। उस समय विधानसभा में कश्यपजी के बयान इसकी गवाही दे सकते हैं। 1978 में बस्तर की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की थी। उक्त कमेटी ने एक समकक्ष विश्वविद्यालय (डीम्ड युनीवर्सिटी) की सिफारिश की थी।

आदिवासी उपयोजना में भी शोषण से रक्षा संबंधी कई प्रावधान स्वयं मैंने किए थे, विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्रों से कच्चे माल की निकासी को लेकर। जब साल-बीज का ठेका दिया जा रहा था तब मैंने इसका विरोध किया था और कहा था कि बस्तर में ही इसका तेल निकालने का कारखाना लगाया जाए; बीज को बंबई भेजने से आदिवासी को क्या लाभ मिलेगा? आपको विश्वास नहीं होगा, साल-बीज को खरीदकर उसे हिंदुस्तान लीवर को देने-भर में ही बिचौलियों ने करोड़ों रुपए कमा लिए। फर्जी तेल-संयंत्र लगाए गए। बस्तर में ही वन-आधारित उद्योग लगाने की माँग तब से करता आ रहा हूँ।

अब जब सार्वजनिक क्षेत्र नहीं आ रहे हैं और निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जा रहा है तो रक्षा की नई व्यवस्था भी विकसित की जानी चाहिए। सहकारी जैसी संस्थाओं की रचना की जाए। आदिवासी को 51 प्रतिशत हिस्सेदारी दी जाए। आदिवासी क्षेत्रों को एक लोकक्षेत्र की आवश्यकता है जो कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों से अलग होगा। आदिवासी क्षेत्रों में लगनेवाले उद्योगों पर समाज का नियंत्रण होना चाहिए। श्रम के आधार पर श्रमिकों की हिस्सेदारी होनी चाहिए।

जोशी : *दिल्ली और भोपाल का जो सत्ता प्रतिष्ठान है उसके चरित्र से तो यह नहीं लगता कि वह आपकी विकास की अवधारणा के अनुरूप कार्य करेगा!*

शर्मा : देखिए, लड़ाई तो इस समय सत्ता, व्यवस्था और लोगों के बीच की है। इसलिए बदलाव के लिए लोकशक्ति का निर्माण करना होगा।

जोशी : *आपका आशय समझ गया। लेकिन दिक्कत यह है कि पिछले 40 सालों में परिवर्तन के क्षेत्र में जो-जो प्रयोग किए गए, एक मुकाम पर पहुँचकर वे अप्रासंगिक हो गए। इस संदर्भ में विनोबाजी, जयप्रकाश नारायण, लोहिया और यहाँ तक कि नक्सलवादियों के अनुभवों को देखा जा सकता है। ये प्रयोग इन सीमित क्षेत्रों में ही सफल रहे, राष्ट्रव्यापी नहीं बन सके। ऐसा क्यों?*

शर्मा : भारत जन-आंदोलन की कोशिश यही है कि अब तक के प्रयोगों से सबक लेकर आगे बढ़ें और परिवर्तन की रणनीति तैयार करें। हम वोट की राजनीति से दूर रहना चाहते है। जे.पी. आंदोलन का हश्र हम देख चुके हैं। वोट की राजनीति से आप सत्ता पर कब्जा कर लेते हैं, व्यवस्था-परिवर्तन नहीं कर पाते हैं। बल्कि सत्ता आपको संचालित करने लगती है। अतः व्यवस्था में बुनियादी

बदलाव के लिए लोकशक्ति की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, देश के एक लाख गाँव यह फैसला करें कि हम किसी भी जनविरोधी कानून को नहीं मानेंगे। निश्चित ही इसका प्रभाव सत्ता प्रतिष्ठान पर पड़ेगा। वह लोकहित के कानून बनाने के लिए बाध्य होगा; जैसे मछली मछुआरे की, ठेकेदार की नहीं। आज के कानून में वह ठेकेदार की है।

जोशी : *आज उपभोक्ता संस्कृति की मार दिल्ली से लेकर जगदलपुर व दंतेवाड़ा तक फैली हुई है। दूरदर्शन, रेडियो और पत्र-पत्रिकाओं के जरिए यह संस्कृति तेजी से फैल रही है। इससे उत्पीड़ित वर्गों की मिलीटेंसी प्रभावित भी हो रही है। यह संस्कृति मृगतृष्णा को यथार्थ में बदलती हुई दिखाई दे रही है। यह समस्या मार्क्स, लेनिन, माओ, होची मिन्ह और गाँधी के सामने नहीं थी। आज इसका विस्फोट हो चुका है। आप इसका सामना कैसे करेंगे?*

शर्मा : देखिए, मैं यह मानता हूँ कि हर व्यवस्था में उसके विनाश के बीज होते हैं। विनाश के बीज यही हैं कि आज झुग्गी-झोंपड़ियों में टीवी के माध्यम से पाँच सितारा होटल की संस्कृति प्रस्तुत कर रहे हैं। कुछ देर तक उसको इल्यूजन रहेगा। लेकिन एक न एक दिन वास्तविकता से उसकी मुठभेड़ होगी ही। दूसरी बात यह है कि हमारे देश में पश्चिमी सभ्यता का जो भारतीय उपभोक्ता संस्कृति संस्करण है वह सार्वभौम नहीं हो सकता। इसकी प्रमुख वजह यह है कि हमारे पास साधन नहीं हैं।

जोशी : *कुछ समय तो पूँजीवाद इन लोगों को भरमाकर रख सकता है। अपने अस्तित्व के लिए पूँजीवाद समय-समय पर, नए-नए हथियार ईजाद करता आया है। जब लोगों का भरम टूटेगा तो नया हथियार मार्केट में आ जाएगा।*

शर्मा : उसकी भी एक सीमा है। आज जब ओजोन की परत में छेद होने लगे हैं तो पूँजीवाद कहाँ बचेगा? अब तक यह माना जाता था कि साधन निस्सीम हैं। लेकिन, अब यह धारणा समाप्त हो चुकी है। विकास के साधन सीमित हैं। साधनों की सीमा काल व स्थान की दृष्टि से निर्धारित करनी पड़ेगी। अमेरिका की अलग होगी, भारत की अलग और उसमें भी बस्तर या सरगुजा की अलग रहेगी। लेकिन दस प्रतिशत लोग इस सीमा को स्वीकार नहीं करेंगे, जबकि निचले स्तरों का दबाव बढ़ेगा। इससे अंतर्विरोध पैने होंगे।

जोशी : *क्या यह माना जाए कि बदलाव की दृष्टि से राजनीतिक पार्टियों की क्षमता चुक गई है?*

शर्मा : मेरे ख्याल से आप सही कह रहे हैं। इन पार्टियों ने विकास के नए प्रतिमान के संदर्भ में सोचा ही नहीं है। इसके ऐतिहासिक कारण हैं। पश्चिमवालों ने शिक्षा

के माध्यम से भारतीय बुद्धिजीवियों को अनुकूलित कर दिया है। आजादी के दौरान के बुद्धिजीवी—चाहे गाँधीजी रहे हों या नेहरूजी, पश्चिम में शिक्षित होते हुए भी यहाँ की जमीन से जुड़े हुए थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है। पश्चिमी बुद्धिजीवियों से हमारा राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन आदि सभी पटे पड़े हैं। गाँधी, लोहिया, जेपी आदि को हाशिए पर रखा हुआ है। इसलिए आज का बुद्धिजीवी जो सत्ता में आ गया है वह अपने ही देश की चुनौती को समझ नहीं पा रहा है। उसके सामने पश्चिम के मॉडल हैं। इसलिए राजनीतिक पार्टियों के ऊपरी नेतृत्व को नई विसंगतियाँ दिखाई नहीं दे रही हैं।

जोशी : *तब क्या राजनीतिक पार्टियों की भूमिका ही नहीं रह गई है?*

शर्मा : ऐसा नहीं है; भूमिका है और रहेगी। लेकिन जन-आंदोलन को भी समानान्तर आधार पर विकसित करना होगा और पार्टियों के नजरिए को बदलना होगा, आंदोलन को वोट की राजनीति से अलग रखना होगा। एक तरह से आंदोलन और पार्टियाँ परस्पर पूरक हैं। लेकिन मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मैं या मेरे सक्रिय साथी कभी चुनाव नहीं लड़ेंगे।

जोशी : *आपके संबंध में प्रचारित किया जा रहा है कि आपके संबंध नक्सलपंथियों से हैं। क्या नक्सलपंथियों के साथ संपर्क रखना गैर-संवैधानिक है?*

जोशी : देखिए, जब मैं अनुसूचित जाति-जनजाति आयुक्त था तब भी मैंने अपनी रपट में लिखा था कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में जो काम शासन, राज्यपाल, मुख्यमंत्री आदि को करना चाहिए था, वह उन्होंने नहीं किया। निचले स्तरों पर आदिवासियों को राहत नहीं मिली, तो शोषण व उत्पीड़न को लेकर एक प्रक्रिया शुरू हुई; उसे आप नक्सलवाद कहें या कुछ और, लेकिन उसने आदिवासियों को राहत दिलाई, यह एक सच्चाई है। जब मैं आयुक्त के रूप में आदिवासी क्षेत्रों में गया था तब चेतना मंडल नामक संस्था ने एक ज्ञापन दिया था कि गरीबों की झोंपड़ियाँ न जलाई जाएँ। क्या यह माँग असंवैधानिक है? चेतना मंडल ने लोगों में चेतना पैदा की है। जहाँ तक संबंध का प्रश्न है, हम लोग एक ही क्षेत्र में काम करते हैं; आंदोलनों में भाग लेते हैं। ऐसी स्थिति में किसी को नक्सलवादी कहना कठिन है। क्या पहचान है ? हो सकता है कि एक व्यापक नक्सलवादी नीति के तहत कोई दिल्ली में काम कर रहा हो; पीपुल्स वार ग्रुप का प्रतिनिधि हो और वो मुझसे बात कर रहा हो; तब कैसे उसकी पहचान की जाए कि वह नक्सलपंथी है ? 25 हजार के आंदोलन में कौन भाग लेता है, हम कैसे पहचान कर सकते हैं?

जोशी : *आप पर मूर्ति-चोर, लकड़ी-चोर होने के आरोप लगाए जा रहे हैं। इस संबंध में आपका क्या कहना है?*

शर्मा : अब देखिए, ऐसा है कि मैं 25 साल पहले बस्तर में कलेक्टर था। इसके

बाद स्थानांतरण हुआ। तबादले को रोकने के लिए भाजपा के नेता कश्यप सहित 11 विधायक राज्यपाल के पास गए थे। इसके बाद मैं भोपाल में रहा। काम के आधार पर इंदिराजी ने मुझे दिल्ली बुलवाया। बुलानेवालों में के.सी.पंत और डॉ. नूरुल हसन भी शामिल थे। उस समय तक भी कोई बात नहीं थी। इसके बाद मैं वापस भोपाल गया। सखलेचाजी के शासन में सचिव व आयुक्त पद पर काम किया। कश्यपजी उस समय आदिवासी कल्याण मंत्री थे, तब उन्होंने मेरा स्वागत किया था। इसके बाद पटवाजी भी कुछ समय के लिए मुख्यमंत्री रहे। फिर अर्जुनसिंहजी का शासन आया। इसके बाद दिल्ली में मैं संवैधानिक अधिकारी बना। राज्यमंत्री का दर्जा मिला। इस पूरे कार्यकाल में किसी ने भी इस तरह के सवाल नहीं उठाए। आपको आश्चर्य होगा यह जानकर कि, सभी कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों से मेरे नीतिगत मतभेद हुए हैं जबकि भाजपाई या जनसंघी मुख्यमंत्रियों से मेरे कभी मतभेद ही नहीं हुए, किसी एक बिंदु पर उनसे मेरी टकराहट नहीं हुई। उनके लोग तो मुझे जनसंघी ही मानते रहे।

जब मैंने जबलपुर में आदिवासी हरिजनों की मिलन मढ़ई कराई थी उस समय मुख्यमंत्री के रूप में सखलेचाजी आए थे, जशपुर स्थित कल्याण आश्रम के कर्ताधर्ता मिश्रीलालजी आए थे। तब कहा गया था कि मिलन मढ़ई आर.एस.एस. की प्रक्रिया है। कांग्रेस की जब सरकार आई तो उसने इसे समाप्त कर दिया। एक पब्लिक मीटिंग में इनके ही एक मंत्री ने मुझे आई.ए.एस. गाँधी की उपाधि दी थी।

अब इतने लंबे कार्यकाल के बाद कोई बात उठती है तो भी मैं जाँच के लिए तैयार हूँ। 1981 में मैंने आई.ए.एस. से स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति ली। प्रश्न उठता है कि मेरे खिलाफ विभागीय जाँच क्यों नहीं कराई गई ? क्यों मुझे पदोन्नति दी गई ? फिर भी मैं सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश या सी.बी.आई. से जाँच के लिए तैयार हूँ। हालाँकि रिटायरमेंट के 10 वर्ष बाद कोई जाँच नहीं की जा सकती, फिर भी इस तथ्य को भुला दिया जाए और न्यायाधीश के तहत मेरे व्यक्तिगत जीवन और कार्यकाल की जितनी भी बातें हैं सबकी जाँच के आदेश दे दिए जाएँ। मैं जाँच का सामना करने के लिए तैयार हूँ। जाँच की दृष्टि से संवैधानिक संरक्षण एवं तकनीकी औपचारिकता को भी त्यागता हूँ। अब जो मुझे जगदलपुर में भाजपाइयों ने नंगा किया है तो मुझे पूरी तरह नंगा हो जाने दो, जिससे कि सभी गंदगी-धूल दूर हो जाए। मैं एक नई पारदर्शिता के साथ उत्पीड़ितों और दलितों की लड़ाई लड़ सकूँ, अब यही महत्वाकांक्षा है।

15 नवम्बर, 1992